International Journal of Research
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 01 Issue 02
March 2014

राजस्थान में मानवाधिकार व पुलिस की भूमिका

डॉ लक्ष्मी नारायण

परिचय-लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में सरकारी ढांचे की आधारशिला कानून का शासन है। यह न केवल कानून और व्यवस्था को प्रभावी ढंग से बनाए रखने की मदद करता है, बल्कि समाज में सामाजिक और आर्थिक न्याय को भी सरंक्षण प्रदान करता है। सरकार की सामाजिक और आर्थिक नीतियों में जनता की आवश्यकताएँ प्रतिबिम्बित होती हैं।[1] वे मुख्य रूप से उन कानूनों द्वारा लागू किए जाते हैं, जिन्हें जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि समुदाय की भलाई के लिए बनाते हैं। सरकार की कार्यकारी शक्ति की सशक्त भुजा के रूप में पुलिस पहले से ही बनाऐं गए कानूनों के समुचित प्रर्वतन के लिए उत्तरदायी है।

भारत में पुलिस की भूमिका को उस ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए जिससे देश गुजरा है और गुजर रहा है। भारत में पुलिस को उपनिवेश शासन की ऐतिहासिक प्रतिकूल स्थितियाँ विरासत में मिली हैं।[3]

पुलिस का अर्थ :–

पुलिस शब्द लैटिन भाषा के 'पोलिटिया' से लिया गया है। जिसकी उत्पत्ति नगर के लिए प्रयुक्त ग्रीक शब्द 'पोलिस' से हुई है।[10] 'नगर के प्रबन्ध की कला' के सम्पूर्ण विचारों से सम्बन्धित यह 'पोलिटिया' नामक व्यापक पद तात्कालीन नगर निवासियों में कल्याण एवं दीर्घ जीवन को प्रभावित करने वाले सभी तथ्यों से सम्बद्ध रखता था और एक राज्य की स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हुए एक प्रशासन तथा विनियम की व्यवस्था की और संकेत करता था''।[11] प्राचीन भारत में भी राष्ट्र तथा जनपद के कल्याण की प्रशासनिक व्यवस्था थी जिसका प्रमुख कार्य पापों अर्थात् अपराधों को रोकना था जहां एक और उत्तर वैदिक काल में अपराध के नियमन करने वाले दल को पोरूष के नाम से पुकारा जाता था। वहीं दूसरी और मनु स्मृति तथा महाभारत काल में भी पोरूष शब्द का प्रयोग अधिकारी के लिए किया जाता था।[12]

पुलिस एवं मानवाधिकार :–

भारत का संविधान बनाने की प्रक्रिया उन दिनों जारी थी जब मानवाधिकारों की सार्वभौंम घोषणा हुई हांलाकि इससे पूर्व 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से जो संविधान का ड्राफ्ट थी श्री मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में तैयार की गई उसमें भी इस प्रकार के अधिकारों की मान्यता थी। संविधान के निर्माताओं ने घोषणा के बहुत से प्रावधानों को संविधान में जगह दी। मूल अधिकार, नीति–निर्देशक सिद्धान्त, मूल कर्तव्य और सिविल अधिकारों में मानवाधिकारों की सार्वभौंम घोषणा के अनेक तत्व शामिल किये गये।[34]

मानवाधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से एक अन्तरिम व्यवस्था तब की गयी जब सन् 1993 में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम – 1993 बना। भारत में मानवाधिकारों की रक्षा की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम था। इस अधिनियम के लागू होने से भारत में मानवाधिकार आन्दोलन में एक नये कदम का सूत्रपात हुआ। इसी क्रम में 12 अक्टूबर, 1993 को मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गयी। इस आयोग में एक अध्यक्ष एवं सात अन्य सदस्य होते है। इसके अतिरिक्त एक महासचिव होता हैं। आयोग का मुख्यालय दिल्ली में स्थापित किया गया।

वर्तमान परिदृश्य में यह आवश्यक है कि पुलिस जनता के मूलभूत अधिकारों का हनन न करे। मानवाधिकारों का आदर व रक्षा करे तथा मानवीयता के पक्ष को ध्यान में रखते हुए अपने दैनिक कार्यों को अंजाम दे।

पुलिस की कार्यप्रणाली, उसके ढांचे, भर्ती व प्रशिक्षण पद्धति में सुधार के लिए अनेक आयोग व कमेटियां गठित की गयी जिन्होंने अपनी रिपोर्टों में अनेकों महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये है। 1972 में बने धर्मवीर आयोग ने पुलिस के नीचले स्तर की कार्यप्रणाली में सुधार, उनकी वेतन श्रृंखला, पदसोपान तथा पुलिस के कार्यक्षेत्र में राजनीतिज्ञों के बढते दखल को रोकने के लिए अनेक सुझाव प्रस्तुत किये थे जो आज तक लागू नही हो पाये। धर्मवीर आयोग ने पुलिस की डंडा संस्कृति को खत्म करने तथा नीचले स्तर के पुलिसकर्मियों का कार्यभार कम करने से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये थे।[37] इसके अलावा कोहली आयोग ने उच्च स्तरीय पुलिस अधिकारियों के लिए सेन्डविच व रिफ्रेशमेन्ट कोर्स का सुझाव दिया तथा भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों की प्रशिक्षण व्यवस्था बदलने का सुझाव दिया।

मानवाधिकारों के सन्दर्भ में पुलिस की भूमिका के चयन करने का मुख्य कारण यह रहा कि पुलिस ही राज्य का वह संगठन है जिसके कंधों पर मानवाधिकारों की सुरक्षा व संरक्षण का भार है। मानवाधिकारों की पृष्ठभूमि में पुलिस एक संरक्षक, मार्गदर्शक व सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका निभाती आयी है। मानवाधिकार घोषणा के अद्यतन समय तक पुलिस की कार्य पद्धति, अनुसंधान के तरीकों व जनता के साथ उसके संबंधों में आमूल–चूल परिवर्तन आया है।[38] भारत जैसे विकासशील देश में छूआछूत, भ्रष्टाचार, अलगाववाद, आतंकवाद जैसे तत्वों पर नियंत्रण रख आमजन के मानव अधिकारों की रक्षा का भार पुलिस के कंधों पर ही है। जवाहर लाल नेहरू ने भी कहा है कि ''पुलिसकर्मी सही व गलत चौराहे पर खडा एक ऐसा व्यक्ति है जिसका दायित्व सही की रक्षा करना व गलत को पकड़ना है।''[39] इसलिए मानवाधिकार संबंधी किसी भी अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण आयाम निश्चय ही वह है जिनके द्वारा मानवाधिकार की रक्षा हो व उनके हनन को रोका जा सके।

मानवाधिकार का अर्थ :–

मानवाधिकार इस दौर का बहुचर्चित विषय है और विशेष रूप से पुलिस संगठनों के संदर्भ में इसका उपयोग अक्सर किया जा रहा हैं मानवाधिकार संगठनों, जनसंचार माध्यमों और जनता के द्वारा पुलिस संगठनों पर मानवाधिकार हनन के आरोप लगाये जाते रहे हैं। पुलिस बल पर लगते हुए आरोपों और न्यायालयों द्वारा पुलिस के विरूद्ध मानवाधिकार हनन के निर्णयों की बढ़ती संख्या को देखते हुए, ऐसा लगता है कि अब समय आ गया है, न केवल पुलिस संगठनों अपितु आमजन भी मानवाधिकार के अर्थ व अवधारणा को समझें। यह आवश्यक हो गया है कि पुलिस संगठनों द्वारा इन आरोपों की सत्यता और मानवाधिकारों को लागू करने के उपायों के बारे में सार्थक चर्चा की जाए ताकि जनमत को पुलिस संगठनों के विरूद्ध होने से रोका जा सके।

अधिकार को अनेक रूपों में परिभाषित किया गया है। एक तथ्य पर सभी विचारक सहमत हैं कि अधिकार कुछ करने या रखने की स्वाधीनता है। जो विधि द्वारा मान्यता प्राप्त और संरक्षित है।[1] अधिकार की अवधारणा की प्रगति कदम–दर–कदम हुई है। इसका अगला कदम है विधिक अधिकार, जो किसी विशेष विधि के दायरें में आने वाले व्यक्ति को उस विधि के द्वारा प्राप्त होते हैं।[2] ये अधिकार आत्यंतिक नहीं हैं और उस विधि द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों से सीमित होते हैं। मूल अधिकार इस अवधारणा का अगला कदम है। ये ऐसे आधारभूत अधिकार हैं जो किसी नागरिक के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अनिवार्य हैं। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का विकास अवरूद्ध हो जायेगा और उसकी शक्तियां अविकसित रह जायेंगी। लेकिन यह अधिकार किसी देश के नागरिक को ही उपलब्ध होते हैं और कोई अ–नागरिक इन अधिकारों को

प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकता है। मूल अधिकारों पर भी तर्कसंगत प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं। अधिकार की अवधारणा का विकास और आगे जाकर मानवाधिकार के रूप में हुआ है।

आसान रूप में कहा जाये, तो मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणि होने के नाते प्राप्त हैं, भले ही उसकी राष्ट्रीयता, लिंग, व्यवसाय, वर्ग और सामाजिक–आर्थिक स्थिति कुछ भी हो। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित किया गया है जो धारा 2 (डी) में वर्णित है। इसके अनुसार मानवाधिकार का अर्थ व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता व गरिमा से संबंधित उन अधिकारों से है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं या अन्तर्राष्ट्रीय करारों में वर्णित हैं और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। इन अधिकारों के बिना व्यक्ति की स्थिति पशु की भांति हो जायेगी। इनके माध्यम से ही व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक आवश्यकतायें पूरी कर पाता है और अपने व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ हो पाता है। मानव होने की धारणा के साथ ही कुछ अधिकार व स्वतंत्रताएं जुड़ी हुई हैं, जिनसे वंचित होने पर मानव अपनी मानवता से ही वंचित हो जाता है। इसलिये मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को मानव जाति का महाधिकार पत्र ठीक ही कहा गया है।[3]

मानवाधिकार के मूल तत्व[4] :–

मानवाधिकारों के अर्थ को पूर्णतया समझने के लिए यह आवश्यक है कि मानवाधिकार में शामिल होने वाले मूल तत्वों को समझा जावे, जिनका वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है :–

1. प्रत्येक मानव प्राणी इन अधिकारों के लिये हकदार है, क्योंकि यह अधिकार उसे मानव के रूप में जन्म लेने के आधार पर मिले हैं।
2. प्रत्येक मानव के साथ उसकी गरिमा जुड़ी हुई है। वह चाहे अभियुक्त हो या युद्धबंदी, चाहे बालक हो या दलित हो, हर मानव की गरिमा की रक्षा आवश्यक है।
3. मानव व्यक्तित्व का विकास इन मानवाधिकारों से जुड़ा हुआ है, जैसे – शिक्षा का अधिकार, अच्छी कार्य दशा का अधिकार आदि मिलने पर ही व्यक्ति विकास कर सकता है।
4. मानव की प्रसन्नता के लिये इन मानवाधिकारों की रक्षा की जानी जरूरी है। प्रत्येक मानव के सुख की ये पूर्व शर्तें हैं।
5. मानवाधिकार प्रत्येक मानव को बिना किसी भेदभाव के प्राप्य हैं, चाहे वह किसी भी प्रजाति, लिंग, भाषा, रंग व धर्म से संबंध रखता हो।

राज्य की उत्पत्ति व मानवाधिकार :–

कबीलाशाही के बाद, जब विकास के अगले चरण में राज्य की स्थापना हुई, तब आदमी और उसके मौलिक अधिकारों की स्थिति क्या थी ? प्रथम चरण में कबीलों के सरदारों, गांव के मुखियाओं और सेनानायकों के गठजोड़ करके किस प्रकार अपने से कमजोर कबीलों पर आक्रमण किए, उन्हें लूटा और अपने ही कबीले तथा अपने ही गांव के कमजोर वर्गों के मौलिक अधिकारों का हनन किया। कम से कम धन देकर उनसे अधिक से अधिक काम लिया। इस प्रकार आरंभिक मानव समाज की समानता धीरे–धीरे खंडित हो गई। समाज में ऐसे संभ्रांत वर्ग उभरने लगे, जो कमजोर वर्गों के अधिकारों पर डाका डालकर, स्वयं कोई भी कष्ट उठाए बिना आराम से रह सकते थे।[43]

आगे का सारा इतिहास विभिन्न कबीलों के बीच हुए छोटे–बड़े युद्धों और एक–दूसरे के विरूद्ध किए गए संघर्षों से भरा पडा है। होता यह था कि किसी एक शक्तिशाली कबीले का सरदार अपने सैनिकों की सहायता से, जो अब उसके निजी सेवकों का रूप धारण कर चुके थे, दूसरे कमजोर कबीलों पर आक्रमण कर देता था।

लम्बा संघर्ष छिड़ जाता। हमले का निशाना बनने वाला कबीला अपनी पूरी शक्ति से आक्रमणकारियों का मुकाबला करता, लेकिन अंत में जीत उसी की होती, जो शक्तिशाली होता। अब से पहले के हमलावर लूट–पाट करने और लूटी गई सामग्री अपने साथ लेकर चले जाते थे।[44] धीरे–धीरे स्थिति थोडी और बदली। जब विजयी कबीला लूट का सामन लेकर वापस नहीं जाता था, बल्कि पराजित कबीलों के गांव पर अपना पूरा अधिकार करके उसे अपने गांव की सीमाओं में शामिल कर लेता था। वह युद्ध में जीते गए गांव के युवाओं को जबरदस्ती अपनी सेना में भर्ती करता। इस तरह आर्थिक शक्ति के साथ–साथ उसकी सैनिक शक्ति में भी वृद्धि हो जाती। अधिक शक्ति प्राप्त कर विजयी पक्ष फिर किसी और निकट के गांव पर आक्रमण कर देता। इस तरह एक–एक करके बहुत से गांवों को जीतकर वह उन्हें अपनी सीमाओं में शामिल करता जाता। आरम्भ में कबीलाई युद्ध में जीते गए ये गांव ही छोटे–छोटे राज्यों के रूप में उदित हुए। विजयी सरदार इन छोटे–छोटे राज्यों का एकछत्र राजा कहलाता। राज्यों की उत्पत्ति के साथ ही इनकी सीमाएं भी निर्धारित हो गई। इन अलग–अलग राज्यों के अलग–अलग नाम रख लिए गए। अपने राज्यों की रक्षा के लिए शासकों ने बड़ी–बड़ी सेनाएं बनाई। कृषकों और दूसरे पेशों से जुडे लोगों से कर वसूल करने के लिए कर्मचारी नियुक्त किए। सामान्य व्यक्ति किसी शासक के विरूद्ध विद्रोह न कर सकें, इसके लिए प्रहरियों या पुलिस की नियुक्ति की गई।[45]

सारांश यह है कि शक्ति के केन्द्र स्थापित होने के साथ ही मानव–समाज में जाति पर आधारित दुर्बल वर्ग विकसित होने लगे थे। यही शोषण मानव–अधिकारों के हनन की आधुनिक स्थिति तक फैलता चला गया।

मानवाधिकार व न्यायपालिका :–

एक ओर जहां भारतीय संसद ने मानवाधिकारों की पर्याप्त सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग, अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग का गठन कर इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये वहीं दूसरी तरह माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी अपने विभिन्न फैसलों व व्यवस्थाओं में मानवाधिकारों की स्थापना के सम्बन्ध में ऐसे निर्णय दिये है जो आज इस क्षेत्र में मील के पत्थर साबित हो रहे है। जनहित याचिका या न्यायिक सक्रियता को चाहे हमारे राजनेता संसद के कार्यक्षेत्र में न्यायपालिका का अनुचित हस्तक्षेप मानकर इसकी आलोचना करते हो पर पिछले कुछ सालों में न्यायपालिका की सक्रियता के चलते मानवाधिकारों की स्थापना व सुदृढता के क्षेत्र में जो कदम उठाये गये है उससे देश के नागरिकों का संविधान व न्यायपालिका पर विश्वास मजबूत हुआ है।

मानवाधिकार और पुलिस बल :–

भारत में अनेक पुलिस संगठन कार्यरत हैं। राज्यों की पुलिस, सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सी.बी.आई., भारत–तिब्बत सीमा पुलिस, आदि का सम्पर्क जनता से होता है। कुछ पुलिस संगठनों का अपराध नियंत्रण के मामलों में, तो कुछ का कानून व्यवस्था बनाए रखने के मामलों में जनता से वास्ता पड़ता है। मानवाधिकार संगठनों और प्रेस के द्वारा अक्सर सभी पुलिस संगठनों पर मानवाधिकार हनन के आरोप लगाये जाते रहे है और यहाँ तक कि न्यायालयों और मानवाधिकार आयोग जैसी आधिकारिक संस्थाओं ने भी इन आरोपों में से कुछ को सच माना है और पुलिस संगठनों के विरूद्ध दाण्डिक कार्यवाही किये जाने और पीड़ितों को क्षतिपूर्ति देने जैसे फैसले या रिपोर्ट दी है।[36]

अंग्रेजी राज में पुलिस का नियमित रूप से गठन किया गया। आमतौर पर ऐसा माना जाताहै कि अंग्रेजों ने यहाँ यह पुलिस बल पैदा किया, न कि पुलिस सेवा। 1861 में पुलिस अधिनियम बनाया गया, लेकिन

व्यक्तियों के अधिकार और जन सेवा के बारे में इस अधिनियम में कोई बात शामिल नहीं थी। प्रशिक्षण के दौरान शरीर को मजबूत करना और परेड से अनुशासन पैदा करना ही मुख्य लक्ष्य माने गये। पुलिस उस समय भी यातना देने की आदी थी। साक्ष्य अधिनियम 1872 में धारा 25 व 26 में पुलिस अभिरक्षा में किया गया इकबाल साक्ष्य में अस्वीकृत माना गया। इस धारा का भी यह प्रभाव हुआ कि पुलिस को इकबाल से भी आगे जाकर बरामदगी पर जोर देना पड़ा और इस काम के लिए ज्यादा पीड़ा देनी पड़ी।[37]

हालांकि 1829 में मैट्रोपालिटन पुलिस के लिए सिद्धान्त बनाये गये थे, जिसमें सातवें सिद्धान्त में पुलिस को जनता के साथ ऐसे संबंध बनाने के निर्देश थे, जिनसे लगे कि पुलिस ही जनता है और जनता ही पुलिस है। लेकिन इस प्रयत्न की कोर्ट में ज्यादा अहमियत नहीं दी, क्योंकि मैट्रोपोलिटन पुलिस सम्पूर्ण भारत के बहुत छोटे से भाग में कार्यरत थी।[38]

आजादी के बाद सभी राज्यों में पुलिस मैन्युअल और रेगुलेशन बने परन्तु वे भी मूलरूप से पुलिस अधिनियम 1861 के अनुरूप थे, हालांकि उनमें कुछ प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता से भी लिये गये, जो 1973 में दोबारा संकलित की गई। इस प्रकार राज्यों के पुलिस नियम अपेक्षाकृत उदार हैं, परन्तु मानवाधिकार की धारणा के अनुरूप वे अब भी नहीं बन पाये हैं।

राज्य मानवाधिकार आयोग :–

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 21 में राज्यों के लिए राज्य मानवाधिकार आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। ऐसे आयोग का गठन राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा तथा उसे (राज्य का नाम) मानवाधिकार आयोग के नाम से सम्बोधित किया जाएगा।[6]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज्य सरकार राज्य में मानवाधिकार आयोग का गठन करने या न करने का विनिश्चयन करने के लिए स्वतन्त्र है। यदि कोई राज्य सरकार राज्य में मानव अधिकार आयोग के गठन का औचित्य नहीं समझती है तो उसे बाध्य नहीं किया जा सकता।

धारा 28 राज्य आयोग द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रतिवेदनों के बारे में प्रावधान करती हैं। इसमें प्रतिवेदन दो प्रकार के बताए गए हैं–(1) वार्षिक प्रतिवेदन; एवं (2) विशेष प्रतिवेदन। आयोग द्वारा राज्य सरकार को अपना वार्षिक प्रतिवेदन एवं समय–समय पर सामयिक महत्त्व के अत्यावश्यक मामलों में विशेष प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होगा। ऐसे प्रतिवेदन राज्य सरकार द्वारा विधान मण्डल के सदनों के समक्ष रखे जायेंगे। सरकार द्वारा यह ज्ञापन भी रखा जाएगा कि–

(अ) आयोग द्वारा क्या सिफारिशें की गई हैं?
(ब) उन सिफारिशों पर सरकार द्वारा क्या कार्यवाही की गई हैं? एवं
(स) यदि सिफारिशों को अस्वीकार किया गया है तो उसके कारण।

राष्ट्रीय आयोग से सम्बन्धित कतिपय प्रावधानों का राज्य आयोग पर लागू होना।

राजस्थान में मानवाधिकार एवं पुलिस –पूर्व प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था, ''पुलिसकर्मी सही और गलत के चौराहे पर खड़ा एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी जिम्मेदारी सही की रक्षा करना और गलत को पकड़ना है। अपनी सर्वश्रेष्ठ भूमिका में वह अपने आप में ही एक सरंक्षक, एक मार्गदर्शक, एक सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा व्यवस्था और प्राधिकार का प्रतीक हैं। ''पुलिस का यह सही एवं वास्तविक मूल्यांकन है। पुलिस समाज की सुरक्षा प्रहरी है। समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखना, अपराधों की रोकथाम करना तथा अपराधियों को धर–पकड़ कर उन्हें कानून के हवाले करना पुलिस का ही कार्य है। यही कारण है कि अपने

International Journal of Research
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 01 Issue 02
March 2014

कर्त्तव्य निष्पादन के लिए विभिन्न विधियों में पुलिस को विपुल शक्तियॉ प्रदान की गई हैं। इन शक्तियों में अपराधों का अन्वेषण करना तथा अभियुक्त व्यक्ति की गिरफ्तार करना प्रमुख है। अपराधों के अन्वेषण में पुलिस को मामलें की तह में जाकर निरापद सत्य का पता लगाना होता है। यह कार्य उतना आसान नहीं है जितना कि इसे समझा जाता है एक कुशल, प्रशिक्षित एवं निष्ठावान पुलिस अधिकारी ही अपराध से अपराधी तक पहुँचने की इस यात्रा को सफलतापूर्वक तय कर सकता है। कई बार पुलिस को अत्यन्त कठोर कदम भी उठाने पड़ते है। यही कठोरता कभी–कभी यातना का रूप ले लेती हैं।

आज आम आदमी की यह शिकायत है कि पुलिस का उसके साथ व्यवहार उचित नहीं है। गिरफ्तार व्यक्तियों के साथ अमानवीय एवं क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। निर्दोष व्यक्ति को तंग एवं पेरशान किया जाता है। परिवादी की सुनवाई नहीं होती । यही कारण है कि आज कोई भी भद्र पुरूष पुलिस को सहयोग करने को तैयार नहीं होता। काफी हद तक यह सही है। विगत वर्षो में पुलिस के व्यवहार मे काफी बदलाव आया है। पुलिस यातना के कई मामलें सामने आए हैं। किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करते ही पुलिस उसे अपराधी मान लेती है। उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाने लगता है। पुलिस यह भूल जाती है कि जेल की दीवारों में बन्द व्यक्ति भी समाज का ही एक अंग है। उसके भी कुछ मूल अधिकार और मानवाधिकार हैं। संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार उसे भी उपलब्ध। मात्र गिरफ्तार हो जाने अथवा जेल की दीवारों में कैद हो जाने से उसके यह अधिकार समाप्त नहीं हो जाते हैं।

'वादीश्वरन बनाम् स्टेट ऑफ तमिलनाडु' (ए.आई.आर.1983 एस.सी.361) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा है कि– ''देश के प्रत्येक व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार है चाहे वह कैदी या बन्दी ही क्यों न हो। मूलभूत अधिकारों को जेल की दीवारों से बाहर नहीं किया जा सकता। ''ठीक ऐसे ही विचार 'सुनील बत्रा बनाम् दिल्ली प्रशासन' (ए.आई.आर. 1982 एस.सी.1579) तथा 'चार्ल्स शोभराज बनाम् अधीक्षक, सेन्ट्रल जेल, तिहाड़' (ए.आई.आर.1978 एस.सी1514) के मामलों में अभिव्यक्त किए गए है। इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा है कि– ''हमारी जेलें कानून के पत्थरों से बनी हैं। इनमें कैद व्यक्ति भी मानव है, पशु नहीं । उन्हें भी सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकर है।''[1]

'जोगिन्दर कुमार बनाम् पंजाब स्टेट' (ए.आई.आर. 1994 एस.सी.1886) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा फिर यह मत व्यक्त किया गया है कि – ''किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने आज एक आम बात हो गई है। लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिए कि गिरफ्तार करन की शक्ति होना एक बात है और ऐसी शक्ति का न्यायोचित् प्रयोग दूसरी बात है। पुलिस अधिकारी को किसी भी व्यक्ति को इसलिए गिरफ्तार नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे गिरफ्तार करने का अधिकार है अपितु उसके औचित्य पर भी विचार करना चाहिए।''[2]

'डी.के.बसु बनाम् स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल' (ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 610) के मामलें में पुलिस द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति के साथ किए गए अमानवीय व्यवहार एवं यातना की उच्चतम न्यायालय द्वारा भर्त्सना की गई और उसे संवधिान क अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना गया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अन्वेषण एवं जॉच के दौरान पुलिस को क्रूर, अमानवीय एवं निम्न स्तर का व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसे मामलों में पीड़ित व्यक्ति राज्य से प्रतिकर पाने के हकदार हैं।[3]

ऐसी घटनाएँ पहले भी कई बार हो चुकी हैं। गुजरात के नाड़ियाद एवं बिहार के भागलपुर की घटना अभी हम भूले नहीं हैं। नाड़ियाद की पुलिस द्वारा वहाँ के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के हाथों में ही हथकड़ी डाल दी थी तथा उसके साथ अमानवीय एवं क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया।

यह सही है कि पुलिस का कार्य अत्यन्त कठिन एवं जोखिम भरा है। कई बार स्वयं पुलिस को कई कष्ट एवं यातनाएँ सहनी पड़ती है। पुलिस को जनता से अपेक्षित सहयोग भी नहीं मिलता है। फिर भी पुलिस को

अपनी यात्रा अनवरत जारी रखनी होती है। कष्ट के क्षणों में ही पुलिस के धैर्य की परीक्षा होती है। अतः अपेक्षा यह की जाती है कि पुलिस इस परीक्षा में खरी उतरे। उसका यह कर्त्तव्य है कि वह जाँच एवं अन्वेषण के समय सभी के साथ मानवोचित व्यवहार तथा मूल एवं मानवाधिकारों का सम्मान करे। हमारे संविधान के अनुच्छेद 22 एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में विहित मानकों का पालन करे ताकि जनता में पुलिस की साख बनी रह सके। पुलिस को चाहिए कि वह–

(1) अनावश्यक किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं करे;
(2) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अविलम्ब गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराए;
(3) गिरफ्तार व्यक्ति की सूचना उसके परिजनों को देने की व्यवस्था करे;
(4) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अपनी रूचि के अधिवक्ता से परामर्श करने का अवसर प्रदान करे;
(5) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को 24 घण्टों के भीतर किसी निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करे;
(6) मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को 24 घण्टों से अधिक परिरूद्ध नहीं रखे;
(7) यदि गिरफ्तार व्यक्ति अपना चिकित्सीय परीक्षण कराना चाहे तो उसका चिकित्सीय परीक्षण कराया जाए;
(8) गिरफ्तार किया गया व्यक्ति यदि मजिस्ट्रेट के समक्ष बयान देना चाहे तो ऐसी व्यवस्था की जाए;
(9) जाँच एवं अन्वेषण के दौरान उसके साथ क्रूरतापूर्ण एवं अमानवीय व्यवहार न किया जाए;
(10) गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को समुचित भोचन एवं चिकित्सा आदि की सुविधाएँ जुटाई जाएं।

'जोगिन्द कुमार बनाम् स्टेट' (ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1886) तथा 'डी.के.बसु बनाम् स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल' (ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 610) के मामलों में इन सभी बातों का समर्थन किया गया है। पुलिस अपने शब्दकोष से शब्द 'यातना' को निकाल दे क्योंकि ''यह मन पर लगने वाला एक ऐसा पीड़ादायी घाव है जो छुआ जा सकता है लेकिन भरा नहीं जा सकता।''

मानवाधिकार हनन के कारण व उपाय :–

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के बाद से इन अधिकारों की रक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। न्यायालयों, आयोगों और मानवाधिकार संस्थाओं के द्वारा इस तरह की रिपोर्ट दी जा रही है कि पुलिस संगठनों द्वारा मानवाधिकारों के हनन की घटनाएं जारी हैं। ऐसी स्थिति में मानवाधिकार हनन के कारणों की तलाश करना जरूरी है। सरकार, संचार माध्यम, जनता, कानून, पुलिस आयोग, विधि आयोग, न्यायालय, संयुक्त राष्ट्र संघ और इसके अंग, मानवाधिकारों का पुलिस द्वारा हनन करने को स्वीकार करते हैं। फिर भी इन अधिकारों के हनन के आरोप रूके नहीं हैं। इस प्रक्रिया के कारणों को समझने के लिये हमें यह जानना होगा कि मानवाधिकार हनन का लाभ किसे है? पहली नजर में यह तथ्य सामने आता है कि प्रत्यक्ष लाभ पुलिसकर्मियों को होता है।[4] पुलिसकर्मियों द्वारा जनता के अधिकारों के हनन से उनमें अहम् का तुष्टिकरण होता है, वे जनता में भय मिश्रित आदर प्राप्त करते हैं, या उन्हें पैसवा वसूलने का मौका भी मिल सकता है। इसी प्रकार के अनेक लाभ गिनाए जा सकते हैं। इन सब के आधार पर तर्कसंगत निष्कर्ष यही निकाला जा सकता है कि पुलिस संगठन ही मानवाधिकार हनन के सबसे बड़े उत्तरदायी है।

इस संदर्भ में एक तथ्य उल्लेखनीय है कि मानवाधिकार हनन की चर्चा होते ही सुरक्षाबलों, विशेषकर पुलिस संगठनों के कार्यों को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। भले ही राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट हो या एमनेसटी इंटरनेशनल की रिपोर्ट, बहुसंख्यक मामले ऐसे ही सामने लाये जाते हैं जिनमें पुलिस संगठनों की कार्यप्रणाली को मानवाधिकार हनन का प्रमुख कारण बताया जाता है। लेकिन अब तक इस समस्या पर

एकपक्षीय रूप से विचार हुआ है। आतंकवादी दलों, अलगाववादी ताकतों ओर नक्सलवाद जैसे क्रांतिवादी दलों की हिंसक गतिविधियों को भी मानवाधिकार हनन का कारण माने बिना हम इस समस्या पर संतुलित विचार नहीं कर सकते हैं। किसी भी व्यक्ति के अधिकारों का हनन करने वाले व्यक्ति या संस्था इस समस्या के उत्तरदायी माने जाने चाहिए, चाहे वह पुलिस संगठन हो या कोई हिंसावादी दल या कोई साधारण अपराधी। पर ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि हम उन कारणों की चर्चा करे जो पुलिस कर्मियों द्वारा मानवाधिकारों के हनन के लिए उत्तरदायी है तभी हमारा शोध तथ्यपरक व व्यावहारिक बनेगा।

निष्कर्ष – मानवाधिकार वे अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते प्राप्त होते हैं। चाहे उसकी राष्ट्रीयता, लिंग, सामाजिक व आर्थिक स्थिति तथा व्यवसाय कुछ भी हो। मानवाधिकारों की बदौलत ही व्यक्ति अपनी आत्मिक, सामाजिक और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है तथा व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने में समर्थ होता हैं। ये मानव अधिकार कानून द्वारा मान्यता प्राप्त एवं संरक्षित होते हैं।

पिछले कुछ वर्षों से सामाजिक न्याय, सामाजिक व आर्थिक समानता व स्वतंत्रता का नारा विभिन्न मंचों पर जोर–जोर से उठाया जाने लगा हैं कमजोर वर्गों जिनमें पिछड़ी व अन्य पिछड़ी जातियाँ, अल्पसंख्यक, महिलाएं व बालक शामिल हैं, के उत्थान के लिए यह धारणा एक नये अर्थ में प्रस्तुत की जा रही है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना व अनुच्छेद 38 में जिस सामाजिक न्याय की संकल्पना की गयी है वह मानव गरिमा के साथ जीने के अधिकार से जुड़ी हुई है। उच्चतम न्यायालय ने ''एयर इण्डिया कॉर्पोरेशन बनाम यूनाइटेड लेबर यूनियन मामले'' में कहा – ''सामाजिक न्याय व समानता समाज के कमजोर वर्गों की पीड़ा, व्यथा एवं हीनता को मिटाने की एक गतिशील युक्ति है। विधि के शासन में वर्ग भेद की समाप्ति ही सामाजिक न्याय व समानता की परिणति है।''

एक अन्य मामले के सन्दर्भ में उच्चतम न्यायालय ने कहा – ''सामाजिक न्याय व समानता का अधिकार एक मूल अधिकार है, क्योंकि न्यूनतम सुख–सुविधा के साथ जीवनयापन, मानव के जीने के अधिकार का ही एक भाग है।''

इन सब निर्णयों से सामाजिक न्याय व सामाजिक समानता के महत्व का उद्घाटन होता है। हाल के वर्षों में आरक्षण के बढते कोटे का प्रश्न भी इसी धारणा से सम्बन्धित है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, अन्य पिछडी जातियों व महिलाओं के लिये लागू किये गये आरक्षण को सामाजिक न्याय के आधार पर न्याय संगत ठहरया गया है जो कि उपयुक्त है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में मानवाधिकारों की स्थिति की तुलना विकसित राष्ट्रों में मानवाधिकारों की स्थिति के साथ की जाती है। यह तुलना उस स्थिति में समीचीन प्रतीत होती है जब हम भारत के विकास के पैमाने और विकसित राष्ट्रों के विकास के पैमाने का आंकलन करते हैं तथा दोनों के बीच ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के अन्तर का मूल्यांकन करते हैं। भारत में गरीबी, बेरोजगारी व अशिक्षा उन्मूलन के द्वारा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति प्राथमिक आवश्यकताएं हैं जबकि विकसित देशों में विलासितापूर्ण जीवन को विकसित करने की कोशिश की जाती है। विकसित देशों में शिक्षा के कारण प्रत्येक व्यक्ति जागरूक है तथा पर्याप्त आर्थिक विकास हो चुका है इस कारण ऐसे राष्ट्र मानवाधिकारों के संवर्धन करने में सफल हैं। भारत में गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, बालश्रम, जातिगत भेदभाव, अलगाववाद, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, रूढिगत मानसिकता आदि ऐसी समस्याऐं हैं जो विकसित देशों से भिन्न है। इसी कारण यहां मानवाधिकारों की स्थिति अन्य देशों से भिन्न है तथा साथ ही मानवाधिकारों के पर्याप्त संरक्षण में ये समस्याऐं बाधा का कार्य करती है।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 01 Issue 02
March 2014

भारत का संविधान बनाने की प्रक्रिया उन दिनों जारी थी जब मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा हुई हांलाकि इससे पूर्व 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से जो संविधान का ड्राफ्ट थी श्री मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में तैयार की गई उसमें भी इस प्रकार के अधिकारों की मान्यता थी। संविधान के निर्माताओं ने घोषणा के बहुत से प्रावधानों को संविधान में जगह दी। मूल अधिकार, नीति–निर्देशक सिद्धान्त, मूल कर्तव्य और सिविल अधिकारों में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनेक तत्व शामिल किये गये।

कल्याणकारी राज्य में पुलिस की भूमिका सामाजिक सुरक्षा एवं अपराध नियंत्रण तक ही सीमित नहीं है बल्कि उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह सामाजिक कल्याण में भी सहयोगी बने। इसलिए विधि एवं व्यवस्था बनाए रखने वाले अन्य संगठनों की तुलना में राज्य पुलिस की भूमिका अधिक संवेदनशील हैं पर राज्य पुलिस पर अक्सर संवेदनहीनता के आरोप लगते हैं। पुलिस थानों में थर्ड डिग्री मैथड, अमानवीय व्यवहार व उत्पीडन किया जाता हैं हिरासत में मौत, झूठी मुठभेड व औरतों से बलात्कार के आरोप पुलिस पर अक्सर लगते हैं। जयपुर का गुर्दा प्रत्यारोपण काण्ड हो, राजस्थान विश्वविद्यालय का जे.सी. बोस बलात्कार काण्ड पुलिस की भूमिका व कार्यप्रणाली पर अक्सर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

विस्तृत शोध एवं अनुशीलन से यह ज्ञात हुआ कि मानवाधिकार हनन के प्रमुख कारणों में पुलिस में व्याप्त अपसंस्कृति, असंतोषजनक कार्यदशा, कानून की सीमाएं, पुलिस भर्ती व प्रशिक्षण व्यवस्था के दोष, पुलिस संगठनों में उच्चतम व निम्नतम पदों के बीच अधिक उर्ध्व दूरी, पुलिस कार्यों में राजनीतिज्ञों का अत्यधिक हस्तक्षेप, सफलता के लिए भारी दबाव, पर्यवेक्षण में कमी, नेतृत्व की अक्षमता व साधनों की कमी, हिंसा की प्रतिक्रिया व बढते अपराध तथा पुलिस कर्मियों के स्वार्थ व मनोवैज्ञानिक पूर्वाग्रह प्रमुख है।

राजस्थान में मानवाधिकार एवं पुलिस संगठनों के सन्दर्भ में किये गये इस विस्तृत, गहन एवं गम्भीर शोध के बाद यह कहना उचित प्रतीत होता है कि सामंती पृष्ठभूमि वाले राजस्थान को मानवाधिकारों की यथेष्ट स्थिति वाले राज्य तक पहुंचने में अभी लम्बा सफर तय करना शेष है। यद्यपि पिछले एक दशक में कुछ पुलिस अधिकारियों द्वारा इस दिशा में बहुत गंभीर एवं महत्ती प्रयास हुये है। परन्तु अकादमिक दृष्टि से शोध करने वाले गंभीर अध्येता को पिछले कुछ समय में हुई चर्चित पुलिस कार्यवाहियों यथा रावला, घडसाना व टोंक के सोहेला में किसान आन्दोलनकारियों पर हुई गोलीबारी की घटना, गुर्जर आरक्षण आन्दोलन के दौरान पुलिस की संदेहास्पद भूमिका तथा ब्राह्मण आरक्षण आन्दोलन के दौरान हुई लाठी चार्ज की कार्यवाही को विस्मृत करना संभव नहीं है। इन परिस्थितियों में पुलिस प्रशासन के मानवाधिकारों के प्रति और अधिक संवेदनशील होने की आवश्यकता अधिक मुखर होती है। वहीं पुलिसकर्मियों की कार्यदशाओं एवं आन्तरिक व्यवस्थाओं में सुधार तथा पुलिस व मानवाधिकार संगठनों के बीच बेहतर तालमेल की आवश्यकता है। मानवाधिकार संगठनों को केवल पुलिस पर आरोप लगाने एवं उसे कटघरे में खडा करने की बजाय सकारात्मक रूप से पुलिस के साथ मिलकर मानवाधिकारों के हनन को रोकने के अधिक प्रभावी उपाय करने होंगे, तभी राजस्थान भविष्य में मानवाधिकारों की स्थापना की दृष्टि से एक अनुकरणीय राज्य बन पायेगा।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 01 Issue 02
March 2014

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Agarwal, H.P. : Implementation of Human Rights, Kitab Mahal) Allahabad, 1983.

Banis, A. - The right to be Human : The case of Punjab Democretic world, Commonwealth Pub. New Delhi. 1996

Batra, T.S. - Human Rights: A critique, Aletropolition Book Company Pvt. Ltd., Delhi, 1982

Burnham, David- Police violence - A changing patlern, Oxford Publication, Bombay, 1994

Chandra, Dr. U. - Human Rights, Allahabad Law Agency Publications- Allahabad, 1997

Devedi, J.N. Police Power and duties, Allahabad Law Agencies, Allahabad, 1980

Ghosh, S.K. - Polic Administrators : Reminiscences, Ashish Pub, House, New Delhi

Jhabula, NH. - The Indian Penal code, Popular Parkashan. bombay, 1991

Kazmi Fareed - Human Rights : Myth and Reality, Intellectual Pub. House, New Delhi - 1998

Mukharjee, U. - Role of Police in Democrasy, S.S. Chand and Com., New Delhi, 1979

Pachauri, S.K. - Prisoners and Human rights, A.PH. Pub., New Delhi, 1993

Pillai, Arun Kumar- National Human Rights Commission of India : Formation, Function and Future Prospects, Atlantic Publishers, New Delhi, 1994

Rai, Rahul - Human Rights U.N.O. Initiatives, Kitab Mahal, 2000

Rampal, R.C. - Perspective in Human Rights, Rajat Publication, New Delhi, 2001

Sharma, Shinha, R.S., R.K. - Perspectives in Human Rights Development, Commonwelth Pub., New Dehli, 1990

Sinha, R.K. - Human Rights of the World, Indian Publishers, New Delhi, 1988.

Sunga, Lyal S., Individual Responsibility in International Law for Serious Human Rights Violations, Nijhoff Publishers, New Delhi, 1998

Thamilmaran, V.T. Human Rights in Third World Perspective, Har Anand Pub., New Delhi, 1976

Vadackumchery, James - Human rights and Police in India, Popular Press, Madras, 1989

बसन्ती लाल बाबेल – पुलिस प्रशासन, अन्वेषण एवं मानवाधिकार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003

दिलीप जाखड – मानवाधिकार एवं पुलिस संगठन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि., जयपुर, 2004

पी.एन रछोया – राज पुलिस का इतिहास, कीर्ति पब्लिकेशन, जयपुर, 1998

राजस्थान का गजेटियर जयपुर, डायरेक्ट्रेक्ट एण्ड मेन पावर डिस्ट्रीक गजेटियर्स, गवर्नमेन्ट ऑफ राजस्थान, 1987